प्रवचन–11, गाथा–14 (दादर मन्दिर)

यह एक समयसार सिद्धान्त-सिद्ध हुई वस्तु को बतलानेवाला है। वस्तु सिद्ध है, जिस प्रकार (है), उसे बतलाने वाले सर्वज्ञ भगवान, जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान था।

आत्मा तो ध्रुव में है। अबद्धस्पृष्ट और त्रिकाल है, उसमें है। उसकी पर्याय में नहीं तो फिर गृहस्थाश्रम में आत्मा कहाँ से आया? आहा...हा...! समझ में आया? कहते हैं कि वे ऊपर रहते हैं। यह शुद्धस्वभाव सर्वस्व में प्रकाशमान है। ऐसे शुद्धस्वभाव को मोहरहित होकर जगत अनुभव करो। जगत अर्थात जगत के प्राणियों। काठियावाड़ अनुभव करो अर्थात् काठियावाड़ के जीव। काठियावाड़ क्या है? ऐसे जगत के जीव, यह भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर विराजता है और यह जो रागादि भाव (हैं वे) अन्दर प्रवेश नहीं होते, प्रवेश नहीं होते, इसलिए इसे बिगाड़ नहीं करते। इसलिए ऐसी चीज नित्यानन्द का अनुभव करो कि जिससे तुम्हारे जन्म-मरण का अन्त आ जाये। यहाँ तो यह बात है बापू!

यहाँ कोई पैसा मिले, दान मिले तो बड़ा राजा हो, देव हो... सब धूल है। सुलगते दावानल के अवतार हैं। यह देव का अवतार भी... आहा...हा...! जैसे लकड़ी की अग्नि या कण्डे की अग्नि जैसे जलाती है, वैसे चन्दन की अग्नि भी जलाती है। चन्दन, चन्दन... वह भी अग्नि हो तो वह जलाती है। वैसे ही देव के सुख भी दुःखरूपी–जला डाले ऐसे हैं। आत्मा की शान्ति को जलाकर राख करें ऐसे हैं, देव के सुख, हों! ये चन्दन की अग्नि है, उनमें भी शान्ति कहीं नहीं है। आहा..हा...!

शान्ति तो प्रभु आत्मा में है। सहजानन्द की मूर्ति प्रभु स्वाभाविक आनन्द है, स्वाभाविक जिसका ज्ञान है – ऐसे आत्मा का अनुभव करने से बद्धस्पृष्टभाव ऊपर तिरते

रहते हैं। इसलिए उसका (आत्मा का) अनुभव हो सकता है। समझ में आया? आहा...हा...! अब इसका दृष्टान्त देते हैं। दृष्टान्त देकर जरा बात स्पष्ट करते हैं।

जैसे कमलिनी-पत्र.... कमलिनी की यह बेल होती है न? कमल की। उस बेल का पत्र जल में डूबा हुआ हो। कमलिनी का पत्र ऐसा होता है कि जिसकी रोम कोरे होते हैं, रोम जिसके कोरे, लूखे होते हैं। पत्र-पत्ता, उसे जब पानी में ऐसे देखो तो कहते हैं कि **जल से स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना भूतार्थ है....** दिखता है, वह पत्ता रोमवाला, रूखी रोमवाला होता है परन्तु पानी की... ऐसा देखो तो अंश भी उसे स्पर्श नहीं हुआ है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, राग और कर्म के सम्बन्ध से व्यवहार के वर्तमाननय से देखो तो है, परन्तु उसके द्रव्यस्वभाव से देखो... आहा...हा...! है? **आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर...** आहा...हा...! उसका स्वभाव तो ज्ञान और आनन्द है। आहा...हा...! उस ज्ञान और आनन्द के स्वभाव के समीप जाकर देखने से वह राग और कर्म का सम्बन्ध झूठा है। उस स्वभाव को पर का सम्बन्ध है ही नहीं। द्रव्य जो है वस्तु, वह तो मुक्तस्वरूप है। आहा...हा...! समझ में आया?

जिसका ज्ञानरस है, आहा...हा...! जिसका अतीन्द्रिय शान्तरस है, ध्रुव है, अविनाशी है, अचल है - ऐसे रस के स्वभाव से देखो तो राग और कर्म का सम्बन्ध झूठा है। आहा...हा...! यह बापू! बातें नहीं हैं। इसकी दृष्टि बदलने पर, पर्याय के प्रति की दृष्टि बदलने पर, इसकी दृष्टि में द्रव्यस्वभाव आता है, उसे देखने पर उस वस्तु को राग का सम्बन्ध आदि सब झूठा है। समझ में आया? यह स्त्री-पुत्र और धूल आदि का सम्बन्ध तो कहीं है ही नहीं; वे तो इसे भूतार्थ में नहीं डाला। पर्यायनय से भूतार्थ में इन्हें नहीं डाला। वह हैं ही कहाँ सम्बन्ध? पर्याय में कहाँ आये? यह तो पर्याय में है, उसकी बात है।

मुमुक्षु : वे बाहर हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो बाहर हैं। बँगला और .... स्वरूपचन्दभाई! यह पुत्र और बँगला कहाँ होगा? आत्मा की जो अवस्था है; वस्तु में तो नहीं परन्तु उसकी अवस्था जो है, उसमें भी वह चीज नहीं है।

यहाँ तो अवस्था में राग, कर्म का सम्बन्ध इतना, ऐसा व्यवहारसम्बन्ध है। वह सम्बन्ध भी व्यवहारनय से देखने पर सत्य है। है; नहीं है – ऐसा नहीं है परन्तु जब भगवान आत्मा के स्वभाव के समीप जाकर... आहा...हा...! उस कमल का कोरा स्वभाव, कमल के पत्ते का कोरा स्वभाव, उसे देखने पर इस पानी को वह कमल स्पर्शा ही नहीं है। आहा...हा...! गजब बात भाई! यह धमाधम, और यह मुम्बई, वापस मोहमयीनगरी, किन्तु तो भी लोग सुनने को... 50-60 जवान हों, 50-60 प्रतिशत सुनने को... (आते हैं।)

अरे भगवान! बापू! तेरे घर की बातें, नाथ, अरे! ऐसी बात कहाँ मिले? प्रभु! ऐ! तू कौन है? कितना है? कहाँ है? कैसे है? वह कैसे प्राप्त होता है, उसकी बात यहाँ चलती है। दूसरा तो तू पाया, अनन्त बार चौरासी के अवतार में भटका। आहा...हा...! भाई आये हैं? तुम्हारे भाई नहीं आये? यही कहता हूँ। वहाँ पूछा तो कहे, नहीं आता। आज आये लगते हैं। कहो समझ में आया? आहा...हा...!

आज तो रविवार है न? रवि अर्थात् सूर्य। भगवान चैतन्य के अनन्त... एक ज्ञान का गुण उसे सूर्य की उपमा कहें तो ऐसे अनन्त गुणवाला प्रभु, वह अनन्त सूर्य का पिण्ड प्रभु है। आहा...हा...! चिमनभाई! दो-पाँच-दस सूर्य नहीं। जिसकी एक ज्ञानकिरण-एक समय का सूर्य समान तीन काल-तीन लोक को प्रकाशित करे – ऐसा उसका एक गुण तो अनन्त लोकालोक को प्रकाशित करे, उससे अनन्तगुने हों तो भी... ऐसे-ऐसे अनन्त गुणों का, अरे! चैतन्यसागर अन्दर पड़ा है। चैतन्य सूर्यस्वभाव को देखते, उसका अनुभव करते, व्यवहार झूठा है। व्यवहार में रहता नहीं। आहा...हा...! उसके जन्म-मरण टल जाते हैं, उसे जन्म और मरण नहीं रहते, वे अनावतारी हो जाता है। भटकनेवाला अवतारी है, वह कलंक है। आहा..हा...! यह पाँचवीं अंगुली होती है न? वह काट डालने जैसी होती है, वरना लटका करती है, बाधा करती है। इसी प्रकार रागादि के भव का कारण को काट डालने जैसा है। समझ में आया? आहा...हा...!

कहते हैं कि चैतन्य के स्वभाव के समीप जाकर... समीप शब्द से आत्मा जो स्व-भाव, स्व-भाव, अपना भाव – ध्रुवभाव, सामान्य भाव, उसके समीप में अनन्त काल में एक समय भी गया नहीं था और लालिमा के पीछे श्वेत गोला, नारियल का श्वेत गोला मीठा,

श्वेत और मीठा, उसे श्रीफल कहते हैं, उस छाल को नहीं, काँचली को नहीं, लाल छाल को नहीं। खोपरापाक बनावे तब निकाल देते हैं न?

इसी प्रकार इसमें यह शरीर, ऊपर की छाल है; ये आठ कर्म के रजकण, वह काँचली है और पुण्य-पाप के भाव, वे काँचली की ओर की लाल छाल-मैल है। उस ओर का यह मैल है। इस लाल छाल के पीछे जो सफेद गोला है; इसी प्रकार पुण्य और पाप के विकल्प के पीछे अन्दर शुद्ध; श्वेत अर्थात् शुद्ध; मीठा अर्थात् आनन्द, शुद्ध आनन्द का कन्द है, उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। आहा...हा...! वहाँ नजर डालना। छाल से हटाकर, काँचली से हटाकर, लाल छिलके अर्थात् पुण्य-पाप के भाव से हटाकर, उन्हें उल्लंघकर, अस्तिरूप से पर्याय में है, उन्हें उल्लंघकर; जिसमें नहीं उसमें नजर करना। आहा...हा...! उसका-स्वभाव (का) अनुभव करने पर, वे बद्धस्पृष्ट आदि (भाव) झूठे हैं। आहा...हा...! समझ में आया? यह तो सादी भाषा है, प्रभु! हमारे चिमनभाई तो कहते हैं... सादी दूसरी नहीं होती – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

बापू! तुझे दरकार नहीं। आत्मा क्या कैसे है और कैसे समझना – इसकी दरकार नहीं। आहा...हा...! अभी समझने की दरकार, हों! पाने की बाद में। यह समझने की दरकार, उसके लक्षण अलग प्रकार के होते हैं। उसे 'लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सून्यौ में....' उसकी लगन चैतन्य कौन है? क्या है? उसकी जिज्ञासा के इसे अन्दर में धोध बहते हैं। आहा...हा...! पूरी दुनिया में रहता दिखे तो भी वह उसमें रहता नहीं। अन्दर... अन्दर... अन्दर... अन्दर... आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...!

कहते हैं, यह भगवान आत्मा, इसका... आत्मा ऐसा कह दिया। आत्मस्वभाव के समीप–ऐसा लिया है। तीन लोक का नाथ आत्मा, जिसकी ध्रुवता के ध्यान में अनुभव हो, तब वह असत्यवस्तु रहती नहीं। आहा...हा...! एक ही प्रकाश होता है... पहले ऐसा कहा था न? चैतन्य अकेला प्रकाशमान, चैतन्य अकेला प्रकाशमान। आहा...हा...! मैं एक चैतन्य ज्योतिस्वरूप, एक मैं ज्योतिस्वरूप, यह अनुभव करनेवाली और अनुभव करनेवाला – ऐसा भी जहाँ भेद नहीं ऐसी चीज वह मैं हूँ, (वहाँ) असत्यार्थ उड़ जाता है। ये रागादिभाव मेरी दृष्टि में; और अनुभव होने पर, वे मेरी पर्याय में भी यह भेद नहीं रहता।

आहा...हा...! देखो इसका नाम धर्म! यह दुनिया बाहर जो दया पालूँ, यह करूँ, परोपकार करो, पाँच-पच्चीस हजार दान में दो और धर्म होगा... धूल में भी धर्म नहीं है। सुन न! तेरे करोड़ों और अरबों दे तो भी धर्म नहीं है। वे तो जड़ हैं। जड़ का स्वामी होकर दे, वह तो मिथ्यात्व भ्रम है। समझ में आया? यहाँ तो अलग बात है भाई! दुनिया से निराली है।

कहते हैं, यह अबद्धस्पृष्टभाव... बद्धस्पृष्टभाव कायम नहीं रहनेवाला होने से, अबद्धस्पृष्ट कायम रहनेवाला होने से, कायम का अनुभव हो सकता है। समझ में आया? कठिन पड़े परन्तु भाव तो यह है। भाषा तो जैसी है, वैसी इसकी सादी आती है परन्तु इसकी दरकार करना चाहिए न, बापू! आहा...हा...! अरे रे! मृत्यु होगी, कहाँ जायेगा? आँधी का तिनका उड़कर कहाँ पड़ेगा? आँधी, आँधी उड़ती है न? उसमें तिनका उड़े, वह जाकर कहाँ पड़ेगा? इसी प्रकार जिसे आत्मा का भान नहीं और मिथ्यात्व में पड़े हैं, मिथ्यात्व की आँधी में जाकर चौरासी के अवतार में कहाँ जायेंगे? भाई! इसकी कोई वहाँ मौसी बा नहीं बैठी है कि यहाँ आ।

ऐसा चैतन्यस्वरूप भगवान शरणभूत है अन्दर, कि जहाँ अन्दर जाने पर आनन्द आता है, जहाँ अन्दर जाने पर असत्वस्तु फूँ... होकर उड़ जाती है, कहते हैं। आहा...हा...! राग और द्वेष और भेद; जो आत्मा अनंत आनन्द का नाथ उसको अनुभव करने पर, ऐसे ध्रुवधाम के अनुसार दशा करने पर अभूतार्थ के वद्व आदि भाव वहाँ नहीं रहते। क्योंकि नित्य वस्तु ध्रुव में उन भेदों का अन्तर प्रवेश (नहीं है)। समझ में आया? आहा...हा...!

यह चैतन्य लक्षण से राग से भिन्न है। जिस आत्मद्रव्य में अनन्त जो ज्ञानादि गुण हैं। जैसे आत्मा अविनाशी त्रिकाल है, वैसे इसकी शक्तियाँ, स्वभाव अविनाशी अनन्त है। उसमें यह चैतन्य लक्षण व्याप्त है। आहा...हा...! और वह व्यापने से गुण में टिक रहा है। सूक्ष्म बात है भगवान! और उस चैतन्य की वर्तमान पर्याय / अवस्था, वर्तमान से निवृत्त होने से नयी दशा को ग्रहण करके निवृत्त होती है – ऐसा उस पर्याय अर्थात् उसकी अवस्था का स्वभाव है। ऐसे जो अनन्त गुण और अनन्त पर्यायों का समुदाय, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा की दृष्टि हो, उसे अनुभव होता है। उसे सम्यग्दृष्टि और सत्य के पन्थ में पड़ा (आया) ऐसा कहा जाता है। आहा...हा...! समझ में आया? यह बात तो हो गयी। अब

इस बन्ध के लक्षण की आज बात है। है दूसरा पैराग्राफ।

अब बन्ध के स्वलक्षण के विषय में कहा जाता है। भगवान! तू आत्मा राग से रहित अबन्धस्वरूप (है)। उसे अन्दर चैतन्य के स्वभाव से जानना, अनुभव करना, यह उसकी चीज है; उसमें उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में 'यह पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है' – ऐसे प्रतीति होती है। आहा...हा...!

अरे! जगत में जैसे लक्ष्मी चली जाये, पिता मर जाये, फिर बाद के लड़कों में विवाद होता है। लक्ष्मी जाये, बाप मरे; वैसे भरत में तीन लोक के नाथ का विरह पड़ा और ज्ञान की दशा भी घटी – केवलज्ञान नहीं होता, उसमें यह सब सम्प्रदाय के विवाद उठे। कोई कहता है व्यवहार से निश्चय होता है; कोई कहता है निमित्त से उपादान में होता है; कोई क्रमबद्ध नहीं; उल्टी-सीधी दशा होती है (ऐसा कहता है)। यह सब... आहा...हा...!

मुमुक्षु : पिता गये...

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! तीन लोक के नाथ का विरह पड़ा... इसलिए था। यह मुनि आठ दिन वहाँ रहे, बापू! यह वस्तु सत्य है, तीन काल में सत्य है, हों! वहाँ पूर्व में आठ दिन रहे, वहाँ के लोगों ने कुन्दकुन्दाचार्य के दर्शन किये। आहा...हा...! वहाँ से आकर यहाँ शास्त्र की रचना की। उन भगवान के सन्देश की यह वाणी है, प्रभु! आहा...हा...! यह वाणी कान में पड़ना भी पूर्व के पुण्य के योग के बिना नहीं मिलती। बाकी तो सब बहुत किया – राग और द्वेष, दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा, आहा...हा...! उसके फलरूप से तो संसार फला है। शुभभाव है, वह भी संसार को देता है। आहा...हा...! भाई आये लगते हैं। यह सब समझने जैसा है। इस धूल में, पैसे-वैसे में कुछ नहीं। कहो, समझ में आया? आहा...हा...! कहते हैं उन प्रभु ने यहाँ आकर शास्त्र रचे, उनमें का यह शास्त्र है।

भगवान! एक बार सुन न प्रभु! आहा...हा...! बन्ध का स्व लक्षण... चैतन्य की बात तो हो गयी। इस बन्ध का स्व, उसका लक्षण तो आत्मद्रव्य से भिन्न रागादि हैं। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु ऐसा जो जीव का स्वरूप, ऐसा जो जीवद्रव्य का स्वभाव जिनस्वरूप है वीतराग स्वरूप है – ऐसा जीवद्रव्य से यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के

विकल्प जो हैं, वे आत्मा के साथ असाधारण हैं अर्थात् आत्मा में हैं नहीं। आहा...हा...! असाधारण ऐसे रागादि हैं। आहा...हा...!

जिस भाव से सर्वार्थसिद्धि का भव मिले, जिस भाव से चक्रवर्ती का पद मिले, भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव की भक्ति के काल में जो भक्ति में तन्मय होकर करे, वह भी एक राग है। वह राग इस बन्ध का स्वरूप है। आहा...हा...! इस राग से आत्मा का कल्याण हो – ऐसा तीन काल में है नहीं। आहा...हा...! चिमनभाई! ऐसी बात है भगवान! आहा...हा...! प्रभु परमात्मा का अभी विरह, केवलज्ञान और मनःपर्ययज्ञान की अस्ति नहीं और विरोध के, प्रतीति के, श्रद्धा के भाव बहुत विरुद्ध हो गये। ऐसी श्रद्धा को सुनने से लोगों को ऐसा होता है अर...र! ऐसी राग की भक्ति की क्रिया से भी धर्म नहीं?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब तो देखो न जवान सुनते हैं न। पचास-साठ प्रतिशत तो जवान बैठे हैं। आहा...हा...! भाई! आत्मा की बात है प्रभु! युवा और वृद्ध तो जड़ की दशा है, नाथ! तू तो अन्दर विराजमान, राग से भिन्न प्रभु तेरी समृद्धि अन्दर है। इन पुण्य और पाप के विकल्प से भिन्न तेरी आनन्द की समृद्धि अन्दर है उसकी नजर तूने कभी नहीं की और नजर कैसे करना–इसकी पद्धति भी तूने नहीं जानी। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं प्रभु! एक बार सुन न, नाथ! यहाँ तो भगवानरूप से आत्मा को बुलाते हैं, हों! आहा...हा...! इसकी माँ इसकी लोरियाँ गावे, गाना गाकर लड़के को सुलाती है। गीत गाकर सुलाती है, गीत गावे तो ही सोता है, गाली दे तो नहीं सोता। देखना हो तो देख लो एक बार। दो चार गाली देकर (कहे) 'मारा रोया सो जा' वह नहीं सोयेगा क्योंकि अव्यक्तरूप से भी उसे पालने के झूले में उसकी महिमा प्रिय लगती है, उसकी माँ उसे सुलाने के लिये उसके गीत गाती है। (यहाँ) तीन लोक के नाथ और सन्त इसे जगाने के लिये इसके गीत गाते हैं। जाग रे नाथ जाग! चैतन्य अब सोना नहीं पोसाता। राग में एकत्वबुद्धि तुझे अब नहीं हो सकती, भाई! आहा...हा...! यह बन्ध का स्वरूप है। आहा...हा...! माणेकचन्दभाई! आहा...हा...! अरे रे! ऐसे पंचम काल में अवतार! साक्षात् परमात्मा विराजते हैं, उनका विरह पड़ा। उसमें यह विरुद्ध श्रद्धाओं के भेद पड़ गये। एक यह माने,

एक यह माने और एक ऐसा माने। आहा...हा...! यह बात सर्वज्ञ की परम्परा में, दिगम्बर सन्तों के हृदय में थी, वह बात बाहर निकल गयी। समझ में आया?

कहते हैं कि बन्ध का स्वरूप... स्वलक्षण – ऐसा कहा है न? बन्ध का स्व (अर्थात्) उसका अपना लक्षण। आत्मद्रव्य (अर्थात्) भगवान आत्मा तो अबन्धस्वरूप है, प्रभु! उससे असाधारण, उससे अत्यन्त भिन्न ऐसे रागादि हैं। आहा...हा...! 'सोलहकारणभावना भाये तीर्थंकर पद पाये' ऐसा कुछ आता है न? पूजा में आता है। परन्तु हे भगवान! हे प्रभु! तू सुन, भाई! यहाँ जगत को परमात्मा की पुकार है। सन्त दिगम्बर महामुनि, भगवान के स्वरूप से विराजते हैं-पंच परमेष्ठी में विराजते हैं। वे कहते हैं कि आत्मद्रव्य से मेलरहित (अर्थात्) नहीं स्पर्शित, ऐसे राग और द्वेष, वह बन्ध का लक्षण है। आहा...हा...! समझ में आया?

यह शास्त्र बनाने का विकल्प, शास्त्र सुनने का विकल्प, शास्त्र कहने का विकल्प... भगवान! यह तो वीतराग का घर है, भाई! यह राग का लक्षण है, वह बन्ध का लक्षण है। भगवान आत्मा में इस विकल्प और राग का तो अभाव है। इसलिए कहा कि आत्मद्रव्य से असाधारण अर्थात् उसमें नहीं रहनेवाले, ऐसे भिन्न पुण्य और पाप के भाव, वह बन्ध का लक्षण है। आहा...हा...! जिसे दुनिया धर्म और धर्म का साधन मानती है।

....होवे वहाँ तो उसकी टेव (आदत) ऐसी होती है कि मानो चक्रवर्ती की रानी हुई तो भी सबेरे उठकर ताक में रोटी रखे। ऐ माँ-बाप! रोटी देना। यह दाँतन ले जाओ – ऐसी उसे टेव। इसी प्रकार यह तीन लोक का नाथ अनन्त आनन्द... चक्रवर्ती के राज्य जब मिले, तब कफ छोड़े वैसे छोड़ दे – ऐसी इसमें ताकत है। जैसे कफ छोड़े, फिर से ग्रहण करने का भाव नहीं होता; ऐसा जो भगवान... आहा...हा...! एक राग जरा हो, स्त्री का जरा लड़के का ऐसा... छोटे लड़के का ऐसा, ऐसा... क्या करना है? क्या है? कहाँ जाना है तुझे? आहा...हा...! ऐसी अन्दर लगनी की वृत्ति बताता है, मानो मैं पूरा इसमें प्रविष्ट हो गया होऊँ।

यहाँ कहते हैं एक बार त्रिकाल नाथ को देख न! उसमें यह कोई चीज प्रविष्ट नहीं है इसका अनुभव करने से यह सब भिन्न है, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है।